झारखण्ड की उरांव और मुण्डा जनजाति में सांस्कृतिक विविधता

डॉ0 आशा कुमारी*

झारखण्ड राज्य भारत के 28वें राज्य के रूप में 15 नवम्बर 2000 को अस्तित्व में आया। झारखण्ड जनसंख्या की दृष्टि से भारत का चौदहवाँ राज्य है''[1] जहाँ भारत की 2.26 प्रतिशत आबादी निवास करती है इस राज्य में 5 प्रमंडल 24, जिला 37 अनुमंडल, 260 प्रखण्ड, 4,423 पंचायत तथा 32615 ग्राम है। 2011 के जनगणना के अनुसार झारखण्ड की कुल आबादी 3,29,88,134 है जिसमें अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या 86,45,042 है कुल जनसंख्या में अनुसूचित जनजातियों का प्रतिशत 26.3 प्रतिशत है।''[2] यहाँ वर्तमान में 32 जनजातियों पाई जाती है जिसमें 9 आदिम जनजातियाँ है। संथाल, उराँव मुण्डा हो खड़िया वैसी जनजातियाँ है जिनकी जनसंख्या ज्यादा है और वे शहरी और अर्द्धशहरी क्षेत्रों में स्थायी रूप से निवास कर रहे है।

''झारखण्ड में अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या बहुत अधिक पाई जाती है। यहाँ पर अनेको प्रकार के जनजातियाँ होने के कारण यहाँ सभी प्रकार के जनजातियों में सांस्कृतिक विविधता पाई जाती है जनजातीय संस्कृति झारखण्ड के धरोहर का एक अभिन्न हिस्सा है जो प्रकृति में अत्यधिक वैविध्यपूर्ण है। प्रजाति, भाषा संस्कृति निवास अर्थतंत्र की दृष्टि से एक विस्मयजनक विविधता झारखण्डी जनजाति संस्कृति में झांकती है। इसके अलावे इनमें सामाजिक आर्थिक धार्मिक संस्कृति में भी विविधता पाई जाती है।''[3]

झारखण्ड में 32 प्रकार के जनजातियों में उराँव एवं मुण्डा जनसंख्या के आधार पर दूसरा एवं तीसरा स्थान है। 2001 के अनुसार उराँव की जनसंख्या 13,90,495 और मुण्डा की जनसंख्या 10,49,767 है। उराँव झारखण्ड की एक महत्वपूर्ण एवं बहुसंख्यक जनजाति है मुख्यता ये राँची गुमला, लोहरदगा, लातेहार, हजारीबाग, सिंहभूम तथा परगना में भी पाये जाते है उराँव अपने को अपनी भाषा में कुडुख कहते है।''[4]

''मुण्डा भी झारखण्ड की तीसरी एवं बहुसंख्यक जनजाति है। मुण्डा जाति का निवास स्थान राँची सिंहभूम हजारीबाग, धनबाद गिरीडीह तथा कुछ संथाल परगना में भी पाए जाते है मुण्डा जनजाति की अपनी भाषा है जिसे मुंडारी कहते है। मुण्डा लोग अपनी भाषा को 'होड़ो जगर' कहते है मुण्डा अपनी मुण्डारी भाषा के अलावा अन्य भाषा का भी प्रयोग करते है।''[5]

उराँव एवं मुण्डा जनजाति में सांस्कृतिक विविधता :

झारखण्ड के उराँव एवं मुण्डा जनजाति में अनेको प्रकार से सांस्कृतिक विविधता पाई जाती है। जैसे – गाँवघर, वेशभूषा, आभूषण, अर्थ–व्यवस्था सामाजिक व्यवस्था, नातेदारी व्यवस्था, राजनीतिक व्यवस्था, धार्मिक आस्था पर्व त्योहार जीवन चक्र एवं मृत्यु संस्कार में भी विविधता पाई जाती है।

गाँव घर :

उराँव जिस क्षेत्र में निवास करते है वह इलाका उबड़–खाबड़, नदी–नालों में खंडित–जंगलो से परिपूर्ण तथा ऊँची–नीची पहाड़ियों से घिरा होता है। जिसे घेरा पहाड़ कहते है पहाड़ों के ऊपर छोटे गाँव और छोटी–छोटी झोपड़िया ढालों व घाटी में बड़े–बड़े गाँव तथा मैदानी इलाके में बढ़ी फैली बस्तियाँ होती है उराँवों के गाँव पहाड़ो–ढालो पर कम जंगली मैदानी इलाकों में बसे है। बस्तियों के लिए ऊँचे स्थानों का चयन किया गया।''[6]

''इनके घर सटे–सटे और बेतरतीब ढंग से बने होते है दीवार प्रायः मिट्टी की होती है और छप्पर खपड़ैल कही कहीं फूस की छावनी भी मिलती है। अब फूस के घर कम मिलते है। राँची जिला के पश्चिमी और दक्षिणी–पश्चिमी भाग में जहाँ जंगल अधिक है फूस के मकान मिलते है कभी दीवाल पेड़ों की टहनी, लकड़ी–बास से बनी होती है जिसपर मिट्टी का पलास्टर चढ़ा होता है जिसे मिट्टी–गोबर से लीप–पोत दिया जाता है फर्श प्रायः मिट्टी की ही होती है जो जमीन से थोड़ी ऊँची होती है। उराँव के दो घर होते है एक बड़ा और दूसरा झोपड़ी नुमा। छोटी झोपड़ी गोशाला के रूप में प्रयोग होती है इससे

* यू.जी.सी.नेट., आर.जी.एन.एफ, न्यू एरिया मोराबादी, राँची

सटे या इसके झुके बरामदानुमा स्थान से सूअर बन्धा होता है इस झोपड़ी के बीच का भाग गाहे–बगाहे सोने के काम में प्रयुक्त होता है गरीब उराँव परिवार का केवल एक ही घर कोठा और ढाबा होता है जिसमें समान भी रखते है और सोते भी है।''[7]

''वर्तमान समय में मुंडा, जनजाति के लोग मिले जुले गाँवों में निवास करते है इनके गांव में कई टोले होते है इनके गाँव पहुँचने में अभी भी नदी–नाला व दुर्गम पहाड़ी रास्तो से गुजरना पड़ता है। गांवों का कोई सुनिश्चित या व्यवस्थित प्रतिमान नहीं होता प्रकृति की गोद में भौतिक स्थितियों के अनुसार इनके गाँव जैसे–तैसे बसे होते है फिर भी गाँव के बाह्य एवं आंतरिक संरचना में एक व्यवस्था परिलक्षित होती है गाँव की गलियां गांव के बाहर की पगडंडियां एवं रास्ते गाँव का मोटा मोटी आयताकार प्रतिमान आदि व्यवस्था के प्रमाण प्रस्तुत करते है। मुण्डा गाँव में तीन विशेष स्थल होते है जो जनजातीय गाँव की विशेषता भी मानी जा सकती है ये स्थान है, 'सरना' जहाँ इनके ग्राम–देवता निवास करते है 'अखड़ा' और सासन। अखड़ा गाँव के बीच खुला स्थान होता है जहाँ पंचायत की बैठक होती है और रात्रि में युवक–युवतियाँ एकत्र होकर नाचते–गाते है झारखण्ड में अखड़ा की एक सुदीर्घ परंपरा रही है आधुनिक औद्योगिक सभ्यता में यह अपसंस्कृति के कुहासे में ओझल होती जा रही है। तीसरा विशेष स्थल, 'ससान' है जो शवाधि या समाधि–स्थल है यहा शवों को दफनाया जाता है वहां मृतकों की पुण्य–स्मृति में पत्थर के सिल शिलाखड रखे जाते है जिसे 'ससान दिरि' कहा जाता है। गांव में प्रायः तीन टोले होते है मुंडा टोली जिसमें मुण्डा खूंट के मुंडा रहते है पाहन–टोली जिसमें पाहन खूंट के मुंडा रहते है और तीसरे टोले में और लोग रहते है ऐसे पाहन टोली में भी अन्य जाति जनजाति के लोग रहते है।''[8]

''मुण्डा के घर बहुत साधारण होते है। मिट्टी की दीवार और खपड़पोश या फूस का छप्पर होता है। इस क्षेत्र में वर्षा काफी होती है इसलिए छप्पर की ढाल अधिक रखी जाती है। मुण्डा के घर में आंगन नहीं होते मुण्डा के मकान में प्रायः एक या दो कमरे होते है इर्द–गिर्द में ओसरा होता है जो प्रायः घिरा रहता है धनी लोगों के घर में तीन या अधिक कमरे होते है। घर में दरवाजा होता है किन्तु अकसर खिड़कियाँ नहीं होती है। मुण्डा के घर संथालों के घर की तरह साफ सुथरा और सुसज्जित नहीं होते रहने के घर पशुओं का बाड़ा तथा सूअर–मुर्गी के दड़बे सभी मिले–जुले अव्यवस्थित ढंग से पाये जाते है''।[9]

वेशभूषा :

''उष्ण कटिबंधीय जलवायु प्रदेश में रहने के कारण उरांव कम वस्त्रों में काम चला लेते थे ये लोग सफेद रंग के कपड़े पंसद करते थे। अब पुरूष धोती–गंजी का प्रयोग करते है परंपरागत केरया अभी भी प्रचलन में है जो पाँच गज लम्बा और एक डेढ़ हाथ चौड़ा कपड़ा होता है जिसके दोनों छोर पर रंगीन धागों से नक्काशी बनी रहती है कमर में डंडा कमरधनी पहनते है गरीब देहाती भगवा का प्रयोग करते है धनी लोग कंबल–रजाई का भी प्रयोग करते है। अब तो नये लोग पैंट कमीज कोट जूता, मौजा चप्पल आदि का खूब प्रयोग करने लगे है घड़ी बान्धने तथा मोबाइल पकड़ने लगे है। महिलाएँ साड़ी और खनरिया पहनती है। युवतियां साड़ी साया चोली, सलवार सुट पैंट सर्ट पहनने लगे है पढ़ी–लिखी या दफ्तर में काम करने वाली युवतियां बिल्कुल आधुनिक वस्त्रों का प्रयोग करती हैं।''[10]

''मुण्डाओं की परंपरागत वेशभूषा 'बटोई' या करेया (पुरूष) और पारेया (स्त्री) प्रायः लुप्त हो गई है। पुरूष धोती, कुरता, पैंट–कमीज पहनते है शिक्षित युवक युवतियाँ अच्छी नौकरियों में लगे मुंडा पैंट, कमीज कोट टाई आदि का प्रयोग करते है स्त्रियों के लहंगा–पारेया की जगह, साडी, पेटी–कोट, ब्लाउज आदि का प्रचलन होने लगा है।''[11]

सामाजिक व्यवस्था :

''उराँवों का सामाजिक जीवन गोत्र पर आधारित होता है। ये अपनी ही जाति में बर्हिगोत्रीय विवाह करते है इनका परिवार अधिकतर संयुक्त होता है इनका वंश परम्परा पिता के पक्ष में होता है उराँव समाज में महिला पुरूष में समानता पाई जाती है कुछ कार्यों को छोड़कर समाज के सभी कामों में महिलाओं की पूर्ण भागीदारी होती है महिलाओं में पर्दा–प्रथा, दहेज–प्रथा एवं बाल विवाह नहीं पाया जाता है। उराँव के सामाजिक व्यवस्था में एक विशेषता यह होती है युवागृह को ''धुमकुड़िया'' कहते है। धुमकुड़िया एक साधारण घर होता था लड़के और लड़कियों के लिए अलग–अलग धुमकुड़िया का प्रबंध

होता था। लड़कों के धुमकुड़िया को जोंख एरेपा और लड़कियों के सोने वाले घर को ''पेलो ऐरपा'' कहते है।[12]

''वही मुण्डा जाति के लोग ''गितिओड़ा'' कहते है जहाँ लोग (लड़के–लड़कियाँ) घर में ना सोकर गितिओडा में ही व्यतीत करते थे किन्तु अब ''धुमकुरिया एवं गितिओड़ा का अस्तित्व खत्म हो चुका है। मुंडाओं के सामाजिक जीवन में परिवार सबसे छोटी इकाई होती है। एकल परिवार इस समाज की प्रमुख विशेषता है संयुक्त परिवार की प्रथा बहुत ही कम पाई जाती है। समाज में पिता की स्थिति पारिवारिक मुखिया जैसी होती है मुंडा जनजाति की सामाजिक व्यवस्था पारिवारिक श्रद्धा और विश्वास पर आधारित होता है।''[13]

आभूषण :

''गरीबी के कारण सामान्य उराँव महिलाएँ सोने–चाँदी के आभूषण नहीं पहनती थी कुछेक धनी घर की स्त्रियाँ सोने–चांदी के गहने पहनती थी प्रायः उराँव महिलाओं के गहने पीतल, ताबे लोहे या अन्य सस्ती धातु के बने होते थे। काँच, बीज धागे कौड़ी आदि से भी गहने तैयार किए जाते थे। गले में हंसुली, मनके की हार या सिकों की हार सिकड़ी, कान में विदियाँ, तरपत, ऊपर कनी, नाक में नक मुठरी व बेसर उंगली में मूदी (अंगूठी) और कतरी और पैरों में पैड़ी पहनती थी उरांव में गोदना की प्रथा प्रचलित थी किन्तु आज लुप्त हो चुकी है और आज आधुनिक युग में आधुनिक आभूषण का उपयोग करने लगे है।[14]

मुंडा स्त्रियाँ श्रृंगार प्रिय होती थी फूल–पत्तों से अपने को सुसज्जित करती थी और आभूषणों का भी प्रयोग करती थी इनके आभूषण सस्ती धातुओं के बने हेाते थे सोने और चाँदी के आभूषण बहुत कम ही देखने को मिलते थे मुण्डाओं में भी गोदना गोदवाना भी एक प्रकार का अलंकरण है गोदना में नाम और चित्र भी उकेरे जाते थे बाहरी संपर्क तथा शहरीकरण के प्रभाव में आभूषणों में काफी बदलाव आया है।''[15]

धार्मिक–व्यवस्था :

''उराँव में जिस देवता की पुजा की जाती है उसे धर्मेश कहा जाता है अन्य देवी–देवता मरंग बुरू (पहाड़ देवता) ठाकुर देव (ग्राम–देवता) डीहवार (सीमांत देवता) पूर्वजात्मा (कुल देवता) आदि है। वही मुण्डा में सर्वोच्च देवता सिंगबोंगा कहलाता है' हातुबोंगा' (ग्राम–देवता को कहते है ओड़ाबोंगा पूर्वजों की मृतात्मा को कहते है। अन्य देवता 'मनिता बोंगा (उदार देवात्मा) 'बनिता बोंगा' अनुदार प्रेतात्मा बुरू बोंगा (पहाड़ देवता) 'इकिरबोंगा' (जलदेवता) मुड़ा टोटेम (इस्ट चिन्ह) की भी पूजा करते है। इस जनजाति के दूसरे महत्वपूर्ण देवता हातु बोंगा, देमौली, जोहार बुढ़ी, चंढी बोंगा इत्यादि ग्राम में बसने वाले देवता होता है।[16]

पर्व–त्योहार :

''उराँव में लोग अप्रैल माह में सरहुल पर्व मनाया करते है इस अवसर में सरना स्थल पर सफेद लाल मुर्गी या मुर्गा की बलि पाहन द्वारा जिसे 'सुडी' कहा जाता है इसे ही तैयार किया जाता है इसी को प्रसाद के रूप में वितरित किया जाता है। इस त्योहार को उराँव में खद्दी पर्व भी कहते है। इस युवा में उराँव महिलायें भाग नही लेती है पूजा में पाहन महतो, सुसारी (सेवक) पनभरवा, (पानी भरने वाला) के साथ–साथ गाँव के पुरूष हिस्सा लेते है। किन्तु पूजा में मुख्य भूमिका पाहन की होती है।[17]

''मुण्डा जनजाति में सरहुल पर्व अप्रैल माह में बसन्तोत्सव के रूप में मनाया जाता है। इस दिन साल का किसलय (नव पल्लव) लाया जाता है तथा सरना स्थल में पाहन द्वारा वृक्ष से निकाला गया गोन्द जलाया जाता है। इस अवसर पर सरना स्थल में लुटकूम हड़प (आदि पुरूष) तथा लुट–कूम बुढ़ी आदि महिला एवं सरना देवी का स्मरण कर उन्हें साल गोंद का धुआँ दिखलाया जाता है इस अवसर पर सिंगबोंगा देसावली तथा ग्राम बोंगा का भी आह्वान किया जाता है मुण्डा जनजाति सरहुल को 'बा' पर्व कहते है।''[18]

मृत्यु संस्कार :

जीवन का अंतिम पड़ाव अर्थात् जीवन चक्र का अंतिम बिन्दु है मृत्यु को उराँव स्वाभाविक मानते है किन्तु अकाल मृत्यु को अच्छा नहीं मानते है। शव का प्रायः दाह–संस्कार होता है खेत में बुनाई के

बाद और फसल कटाई के पहले मर गये व्यक्ति का शव अस्थायी तौर पर गाड़ दिया जाता है और कटनी के बाद, दाह–संस्कार होता है। साल में एक बार प्रायः जनवरी में 'हडबोरा' संस्कार होता है। इसमें हड्डी को चुनकर नदी में निक्षेपित की जाती है। उराँवों में आत्माओं के इस मिलन को 'कोहा–बेंजा कहते है।''[19]

मुण्डा समाज में शव को गाड़ने और जलाने की दोनों प्रथा पायी जाती है। शव को जहाँ दफनाते है उसे 'ससान' कहते है ससानदिरी मुंडा गांवों की असली पहचान है। इसे अस्थि–कलश को ससान में गाड, दिया जाता है और उसके ऊपर एक पत्थर रख दिया जाता है जिसे 'ससान दिरी' कहा जाता है इसे 'हड़गड़ी' भी कहते है। एक वर्ष की अवधि में मरे सबों की हड्डी ससान में गाड़ी जाती है इसे 'जंग टोपा कहते है।''[20]

आधुनिक और बाहरी संपर्क में आने के कारण उराँव मुण्डा के जीवन में बहुत से विविधताएँ समान हो गये है। शहरों में निवास करने वाले उरांव और मुण्डाओं का रहन–सहन, खान–पान, वेशभूषा संपन्नता और संस्कृति सभी कुछ इतना बदल गया है कि वे भद्र लगने लगे है यहाँ तक की अपनी भाषा, लोकगीत और लोककथाओं को भुलते ही जा रहे है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शर्मा : डॉ. बिमला चरण एवं कीर्ति बिक्रम, (2006) झारखण्ड की जनजातियाँ, क्राउन पब्लिकेशन्स, राँची, पृ.सं. 1
2. वर्मा : प्रियका, (2014) सामान्य ज्ञान, स्पर्धा प्रकाशन, जमशेदपुर झारखण्ड, पृ. संख्या 5
3. वर्मा : उमेश कुमार, (2008) जनजातीय समाजशास्त्र, जानकी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.संख्या 38
4. उपरोक्त, पृ.सख्या 55
5. उपरोक्त, पृ.सख्या 69
6. शर्मा : डॉ. बिमला चरण एवं कीर्ति बिक्रम, (2006) झारखण्ड की जनजातियाँ, क्राउन पब्लिकेशन्स, राँची, पृ.सं. 370
7. उपरोक्त, पृ.सख्या 371
8. उपरोक्त, पृ.सख्या 350
9. उपरोक्त, पृ.सख्या 350–351
10. उपरोक्त, पृ.सख्या 374
11. उपरोक्त, पृ.सख्या 351–352
12. खलखो : डॉ. शान्ति, (2009) उराँव संस्कृति : परिवर्तन एवं दिशाएँ कुडुख़ विकास समिति राँची, पृ. सख्या 250
13. कुमार : श्याम (2004) झारखण्ड एक विस्तृत अध्ययन, सफल प्रकाशन अपर बाजार राँची, पृ.सख्या 494–495
14. शर्मा : डॉ. बिमला चरण एवं कीर्ति बिक्रम, (2006) झारखण्ड की जनजातियाँ, क्राउन पब्लिकेशन्स, राँची, पृ.सं. 374
15. उपरोक्त, पृ.सख्या 352
16. उपरोक्त, पृ.सख्या 392, 360
17. खलखो : डॉ. शान्ति, (2009) उराँव संस्कृति : परिवर्तन एवं दिशाएँ कुडुख़ विकास समिति राँची, पृ. सख्या 142
18. वर्मा : उमेश कुमार, (2008) जनजातीय समाजशास्त्र, जानकी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.संख्या 74
19. शर्मा : डॉ. बिमला चरण एवं कीर्ति बिक्रम, (2006) झारखण्ड की जनजातियाँ, क्राउन पब्लिकेशन्स, राँची, पृ.सं. 391–392
20. उपरोक्त, पृ.सख्या 359